ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

भारतीय संस्कृतिः सिद्धान्त और विकास

[1]डॉ0 मंजुला यादव
[1]एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

Received: 07 Jan 2019, Accepted: 13 Jan 2019 ; Published on line: 15 Jan 2019

Abstract

संस्कृति किसी भी देश या राष्ट्र की जातीय अस्मिता की पहचान हुआ करती है इसलिए स्वाभाविक है कि उस राष्ट्र का गौरव और वैभवपूर्ण विकास उसकी अपनी सांस्कृतिक समृद्धि पर निर्भर करता है। आकस्मिक नहीं है कि आधुनिक राष्ट्रीय नवजागरण के दौरान अपनी जातीय अस्मिता की पहचान के निमित्त ही सांस्कृतिक परम्परा के मूल्यांकन–पुनर्मूल्यांकन का लम्बा दौर दिखायी देता है। उस समय प्रकाशित लगभग सभी पत्र–पत्रिकाओं में संस्कृति सम्बन्धी लेखों की भरमार यों ही नहीं है। उस समय भाषा, साहित्य, कला मूल्य, संस्कृति और इतिहास सम्बन्धी अनेक सवाल उठ खड़े हुए थे और अपनी सांस्कृतिक विरासत की सही पहचान एक अनिवार्य आवश्यकता बन गयी थी। कारण यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकारों और चिन्तकों की साम्प्रदायिक संकीर्णता के चलते उनके द्वारा भारतीय संस्कृति और सभ्यता को दोयम दर्जे की सभ्यता के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने इतिहास लेखन में ब्रिटिश प्रशासन की 'फूट डालो और राज करो' की कुटिल नीति का ही अनुसरण किया है।

मुख्य शब्द– भारतीय संस्कृति, सिद्धान्त, विकास, राष्ट्र की जातीय अस्मिता।

परिचय

प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स मिल के हवाले से रोमिला थापर ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार मिल के ब्रिटिश भारत का इतिहास (हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया) का सबसे महत्त्वपूर्ण पहले शायद यह था कि एक दृष्टि से उसमें भारतीय इतिहास की तीन कालों में विभाजित करने की प्रस्थापना विकसित की और इन तीनों कालों को उसने नाम दिया– 'हिन्दू सभ्यता', 'मुस्लिम सभ्यता' और 'ब्रिटिश सभ्यता' (मजे की बात यह है कि इसके लिए 'ईसाई सभ्यता' नाम नहीं दिया है।)1 अतः इन साम्राज्यवादी इतिहासकारों की अलगाववादी साम्प्रदायिक दृष्टि का प्रतिरोध करने की प्रक्रिया में राष्ट्रवादी इतिहासकार संगठित हुए और सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान के लिए जगह–जगह प्राच्य विद्या संस्थानों की स्थापना हुई।

इन सारे प्रयासों के पीछे मुक्तिकामी जनता की राष्ट्रीय एकजुटता और सांस्कृतिक सुरक्षा का भाव निहित था क्योंकि अंग्रेजों ने भारत में न केवल अपना सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित कर लिया था बल्कि हमारी कीमती सांस्कृतिक विरासत पर भी उनके आक्रमण काफी तेज हो गये थे। संस्कृति सम्बन्धी विभिन्न सवालों के टकराने से पहले यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि वस्तुतः संस्कृति क्या है, उसकी प्रकृति क्या है? तथा मानव जीवन समाज और साहित्य से उसके सम्बन्ध क्या हैं?

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

जीवन की उन आवश्यकताओं का नाम ही संस्कृति है जो मनुष्य में ज्ञान, विवेक और सन्तुलित व्यवहार पैदा करती है तथा साहित्य और भाषा एवं उनकी संस्थाओं को संचालित करती हुई उनके जीवन के आदर्शों और सिद्धान्तों को ज्योति प्रदान करती है। संस्कृत का समानार्थी अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द का अर्थ भी इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है। 'कल्चर' शब्द लैटिन भाषा के 'कलचुरा' शब्द से बना है जिसका अर्थ है– उत्पादन।

संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के दो शब्दों के योग सम–कृति से हुई है जिसका अर्थ है समान प्रकार के किया हुआ व्यवहार। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि से, ''संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु है। वह समस्त दृश्यमान विरोधों में सामंजस्य स्थापित करती है।''2 इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृति एक लम्बी साधना का परिणाम है जो व्यक्ति को व्यक्ति के समीप लाती है। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार– ''संस्कृति जीवन का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत को अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं।''3

इस प्रकार मनुष्य का संस्कारित होना ही संस्कृति का विकसित होना है। विकास की यह प्रक्रिया पीढ़ी–दर–पीढ़ी सीखने और सिखाने के क्रम में पहुँचती रहती है, उसी रूप में नहीं परिवर्तित स्वरूप में। भगवत शरण उपाध्याय के शब्दों में– ''संस्कृति एक प्रकार का मानसिक विकास है, एक विशिष्ट दृष्टिकोण, जो समाज में हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। यह एक प्रकार का संस्कार है, मानसिक, निखार और यह संस्कार व्यक्तिगत भी हो सकता है, सामूहिक भी।''4

संस्कृति अपने पुराने केंचुल को छोड़कर नवीन कवच से अपनी रक्षा करती है। संस्कृति में संग्रहकर्ता एवं सामंजस्य भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है। आचार्य द्विवेदी के अनुसार– ''मनुष्य के उत्थान–पतन का इतिहास बड़ा रोचक है न जाने कितने मूल्यों से मनुष्य ने अपना धर्म विश्वास संचय किया है। जातिगत और सम्प्रदायगत संकीर्णताओं से जर्जरित काल में यदि हम जान सके कि मनष्य कितना ग्रहणशील प्राणी है, वह किस निर्भयता के साथ संस्कृति के साथ चिपटे हुए सड़े–गले छिलकों को फेंकता आया है और किस दुर्वार शक्ति से अन्य श्रेणियों के सत्य को ग्रहण करता आया है तो यह कम लाभ नहीं है।''5

जाहिर है जाति और सम्प्रदाय की संकीर्ण मानसिकता के बीच इस युग में अपनी सांस्कृतिक परम्परा की सही पहचान कर पाना एक कठिन लक्ष्य है। इसके लिए ग्रहण और त्याग के संतुलित विवेक और ईमानदारी की आवश्यकता होती है।

''हमारे देश का सांस्कृतिक साहित्य और धर्म साधना पर इन आर्येतर जातियों के गहरे प्रभाव को स्वीकार करते हुए दृढ़ता के साथ यह स्थापित करते हैं कि– ''अजन्ता में चित्रित, साँची, भरहुत आदि में उत्कीर्ण चित्र और मूर्तियाँ आर्येतर सभ्यता की समृद्धि के परिचायक हैं। महाभारत और कालिदास के काव्यों की तुलना करने से जान पड़ेगा कि दोनों दो चीजें हैं। एक में तेज है, गरिमा है और

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

अभिव्यक्ति का वेग है तो दूसरे में लालित्य है, माधुर्य है और व्यंजना की छटा है।''8 महाभारत में आर्य उपादान अधिक है, कालिदास के काव्यों में आर्येतर।

कई जातियाँ भारत में प्रविष्ट हुई। उन्होंने अपना राज्य भी स्थापित किया किन्तु अपनी कतिपय सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ वे यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा में विलीन हो गयीं। इन सबके बाद भारतीय संस्कृति को प्रभावित करने वाली जातियाँ वे थीं जो इस्लाम के झण्डे के नीचे भारत में प्रविष्ट हुईं। आठवीं सदी के आरम्भ से सोलहवीं शताब्दी तक लगातार इन मुस्लिम जातियों का आगमन होता रहा। मुसलमानों के आगमन से जिस इस्लाम का सामना हुआ, उसके पास न केवल एक सुसमृद्ध सांस्कृतिक परम्परा थी, बल्कि उसमें भारतीय संस्कृति के विरोधी उपादान भी थे। इस्लाम को प्रायः इकहरी दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया जबकि सच्चाई यह है कि एक ओर जहाँ उसके हाथ में बर्बरता की प्रतीक नंगी तलवार थी, वहीं दूसरे हाथ में दलितोत्थान के संकल्प का अमृत कलश भी था। दूसरी बात यह है कि इस्लाम के साथ ही भारत में सूफी मत का भी प्रवेश हुआ जिसने अपने जाति–धर्म निर्विशेष गुणों के कारण भारतीय समाज को बड़ी गहराई से प्रभावित किया।

आकस्मिक नहीं है कि शुद्धता के मिथ्या अहं से पीड़ित इकहरी समझ के बुद्धिजीवियों ने भारतीय संस्कृति के अन्तर्विरोधों को नजरअंदाज करते हुए उसे बड़े सपाट ढंग से देखने और समझने का प्रयास किया है। रक्त–गोत्र पवित्रता और जाति–पाति के भेदभाव पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थन और संरक्षण में न जाने कितने मिथकों की रचना की गई।

इन प्राचीन मिथकों से आक्रान्त शुद्धतावादियों के मिथ्या अहंकार पर चोट करते हुए द्विवेदी ने लिखा है– ''देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति बात की बात है सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा। वह गंगा की अबाधित अनाहृत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है।'' अतः शुद्ध संस्कृति की बात अवैज्ञानिक और निराधार है।9

किसी भी संस्कृति का विकास केवल एक जाति से नहीं होता बल्कि उसके विकास में अन्य समुदायों का भी हाथ होता है। जब दो अलग–अलग संस्कृतियाँ आपस में घुलती–मिलती हैं तो कुछ छूटता है, कुछ जुड़ता है और कुछ की रक्षा होती है। इस प्रकार ग्रहण और त्याग के माध्यम से आत्मरक्षामूलक प्रयत्न ही सांस्कृतिक नवचेतन का कारण बनता है।

भारतीय समाज महामानव समुद्र है। इसमें विभिन्न विचारों, मतों, सम्प्रदायों और धर्मों के मानने वाले लोग रहते हैं। इन्हीं में कुछ ऐसे श्रद्धापरायण भारत–व्याकुल लोग भी रहते हैं जो अच्छे से अच्छे वाह्य विचारों अथवा विदेशी प्रभाव के नाम पर ऐसे भड़कते हैं जैसे लाल कपड़े को देखकर सांड़ भड़कता है। अज्ञेय ने संस्कृति में संग्राहक तत्व को रेखांकित किया है। उनने अनुसार– ''संस्कृति का चिन्तन करने वाले किसी भी विद्वान के सामने यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि संस्कृतियाँ प्रभाव ग्रहण करती हैं अपने अनुभवों को समृद्धतर बनाती हैं लेकिन यह प्रक्रिया मिश्रण की नहीं है। संस्कार नाम ही इसको स्पष्ट कर देता है।''10

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

जिस प्रकार हम प्याज के सड़े हुए बाहरी छिलके को निकालकर फेंक देते हैं और भीतर से नया और ताजा छिलका प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार संस्कृतियाँ भी अपने साथ चिपके हुए सड़े–गले और रूढ़ विचारों को त्यागकर सांस्कृतिक नवचेतन का रूप ग्रहण करती है।

आज भारतीय संस्कृति भी संक्रमण की इसी प्रक्रिया से गुजर रही है। आधुनिकीकरण की अन्धी दौड़ में पश्चिम का अन्धानुकरण हो रहा है। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के साथ ही अपसंस्कृति भी फल–फूल रही है जिससे सांस्कृतिक अवमूल्यन का खतरा बढ़ रहा है।

''इतिहास की प्राणधारा को नजरअंदाज कर केवल भौगोलिक चौहद्दी को ही भारतीय संस्कृति मानकर प्रतीक पूजा करने वाले लोग ही 'संस्कृति' पर ज्यादा मुग्ध हैं। कदम–कदम पर उन्हें संस्कृति पर खतरा मंडराता नजर आता है।11

'भारतीय संस्कृति' को जिन्होंने अखण्ड और शाश्वत माना है और अनेक भ्रान्तिपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं उन्हें साहित्य चिन्तन से हटकर संस्कृति के सवाल पर गहरायी से चिन्तन करना चाहिए। सब मिलाकर यही कहा जा सकता है कि आज हमारी सांस्कृतिक परम्परा और उसके विकास के अंतःसम्बन्ध समस्याग्रस्त हैं। उनमें से न एक को छोड़ा जा सकता है, न दूसरे को। विकास आज की अनिवार्य आवश्यकता है तो परम्परा में भी अदम्य जिजीविषा शक्ति है जिसने ऐतिहासिक विकास यात्रा में समय–समय पर अपने को प्रमाणित भी किया है। अतः इन दोनों में सामंजस्य के बिना सांस्कृतिक विकास की कल्पना असम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. इतिहास की पुनर्व्याख्या, रोमिला थापर, पृ0 89
2. अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 58
3. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ0 5
4. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, भगवतशरण उपाध्याय, पृ0 34
5. कल्पलता, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 131
6. कल्पलता, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 188
7. भारत का इतिहास, रोमिला थापर, पृ0 30?
8. दूसरी परम्परा की खोज, नामवरसिंह द्वारा उद्धृत, पृ0 90
9. अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 14
10. स्मृति लेखा, अज्ञेय, पृ0 118
11. आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य, प्रो0 चौथीराम यादव, पृ0 86